



मङ्गलायतन



श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का
मासिक मुखपत्र

वर्ष-11, अङ्क-11 जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व-16 (वि.नि.सं. 2538) नवम्बर 2012

आत्म-कीर्तन.....

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-दृष्टा आत्मराम ।

मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग वितान ॥1 ॥

मम स्वरूप है सिद्धसमान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।

किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिकारी निपट अजान ॥2 ॥

सुख-दुःख दाता कोई न आन, मोह-राग-रुष दुःख की खान ।

निजको निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान ॥3 ॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।

राग त्याग पहुँचूँ निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम ॥4 ॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।

दूर हटो परकृत परिणाम, ज्ञायकभाव लखूँ अभिराम ॥5 ॥



**प्रधान सम्पादक**

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

भूतपूर्व मुख्य सलाहकार

स्व. साहू रमेशचन्द्र जैन, नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक मण्डल

ब्र. पण्डित ब्रजलाल शाह, वदवाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, मङ्गलायतन वि.वि.

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, मङ्गलायतन

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

मार्गदर्शन

डॉ. किर्रीटभाई गोसलिया, अमेरिका

श्री लक्ष्मीचन्द्र बी. शाह, लन्दन

श्री पवन जैन, अलीगढ़

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

सम्पादकीय सलाहकार

पण्डित रतनचन्द्र भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

शुल्क :

वार्षिक : 50.00 रुपये

एक प्रति : 04.00 रुपये

जीवादि**प्रयोजनभूत तत्त्व****विशेषाङ्क - 16****क्या / कहाँ**

त्रिकाल मुक्तस्वरूप में...	3
धर्म की कमाई का अवसर	8
तत्त्वनिर्णय	12
बहिरात्मा जीव की.....	17
पापी से परमात्मा	26
समाचार-सार	30

प्रस्तुत अङ्क-प्रकाशन में सहयोग

स्व० शीतलप्रसाद**शकुन्तलादेवी जैन****आजाद ट्रेडिंग कम्पनी****जैन मन्दिर के नीचे****लाल कुआँ, बुलन्दशहर।**

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा
मङ्गलायतन मुद्रणालय, आगरा रोड,
अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल',
हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

सम्पादक : पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़।



जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व : जीवतत्त्व

श्री परमात्मप्रकाश, गाथा-65 पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

त्रिकाल मुक्तस्वरूप में बन्ध-मोक्ष नहीं

बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहँ कम्मु जणेइ ।

अप्पा किंपि वि कुणइ णवि णिच्छउ एउँ भणेइ ॥

हैं आत्मा के बंध मोक्षादि सभी कर्मज कहे ।

है वास्तविक कथनी यही आत्म नहीं इनको करे ॥

अर्थात् हे जीव! जीवों के बन्ध-मोक्ष सब ही कर्म उत्पन्न करता है, आत्मा कुछ भी नहीं करता है, ऐसा निश्चय कहता है ।

भगवान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं कि निश्चयनय से भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप है, अर्थात् आदि और अन्तरहित अकृत्रिम अनादि-अनन्त सामान्य, गुणस्वरूप ध्रुवतत्त्व है...

यह जरा सूक्ष्म बात है, क्योंकि अनन्त काल में कभी इसने 'आत्मा' क्या है? ऐसी दृष्टि नहीं की, इसलिए स्पष्टीकरण करके कहा जाता है ।

सर्वज्ञदेव कहते हैं कि हे जीव! बन्ध को और मोक्ष को, जीवो का कर्म ही करता है, आत्मा कुछ भी नहीं करता; इस प्रकार निश्चयनय कहता है, अर्थात् निश्चयनय से भगवान ने ऐसा कहा है कि बन्ध और मोक्ष, कर्मजनित है; कर्म के योग से बन्ध होता है और कर्म के वियोग से मोक्ष होता है ।

सर्वज्ञ भगवान कैसे हैं? जिन्होंने एक समयमात्र सूक्ष्म काल में तीन काल और तीन लोक को देखा है, प्रत्यक्ष जाना है, ऐसे भगवान की वाणी में यह आया कि भाई! निश्चय, अर्थात् सत्य तत्त्व चाहिए तो वह तत्त्व अपरिमित ज्ञान-दर्शनमय तत्त्व है, वह स्वयं कर्म को बाँधे या कर्म को छोड़े, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है ।

सूक्ष्म बात है भाई! सुनो, भगवान क्या कहते हैं? - वस्तु का वास्तविक स्वरूप क्या है? यह कभी सुना नहीं, सुना हो तो जँचा नहीं हो कि यह



आत्मा वास्तव में आनन्द-आनन्दमय तत्त्व है।

नव तत्त्व में सिद्ध का जैसा पर्याय में मोक्षस्वरूप है, वैसा ही जीवतत्त्व का कायमी वस्तुस्वरूप है, वस्तु स्वयं कर्म को बाँधे या कर्म को छोड़े - ऐसा उसका स्वरूप ही नहीं है। वस्तु स्वयं एक समय की दशा में नहीं आती, वह तो अनादि-अनन्त अकृत्रिम सच्चिदानन्द तत्त्व है। ऐसे तो अनन्त आत्माएँ हैं, वे कोई आत्मा अपनी एक समय की दशा में नहीं आते हैं। ऐसे स्वतत्त्व के लक्ष्य बिना एक समय की दशा में परसन्मुख की दृष्टि से एक अंश के लक्ष्य से उत्पन्न हुए राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव, वह भी कर्म है। वह भावकर्म है और उससे जड़कर्म बँधते हैं।

वस्तु स्वयं परमस्वरूप परमात्मा ही है। यदि वस्तु ही पूरी न हो, तब तो पर्याय में पूर्णता आयेगी ही नहीं। जैसे, छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट है तो उसे घिसने से बाहर आती है, यदि वस्तु में ही शक्ति न हो तो प्रगट कहाँ से होगी? अन्दर में जो शक्तियाँ पड़ी हों, वही बाहर आती है? भगवान आत्मा में-वस्तु में केवलज्ञान और केवलदर्शनादि की शक्ति है तो उसमें से अरिहन्त और सिद्धपद प्रगट होता है। वस्तु स्वयं अनन्त गुण का निधान है, खान है परन्तु उसकी अन्तर्दृष्टि नहीं करके अनादि से जीव ने वर्तमान अंश में परसन्मुख ही दृष्टि की है। वर्तमान दशा में अपने त्रिकाली स्वभाव का लक्ष्य नहीं करके, पर के प्रति दृष्टि करके इसने विकार उत्पन्न किया है। उससे कर्म बँधते हैं, और उस कर्म के उदय से जीव चार गति में भटकता है और नये कर्म बाँधता है तथा कर्म के अभाव से वह मुक्त होता है। ऐसा कहकर कर्म से जीव बँधता है और कर्म से मुक्त होता है, वस्तु तो त्रिकाल मुक्त ही है - ऐसा कहना है।

अहो! भगवान तीर्थकरदेव द्वारा कथित ऐसा त्रिकाल मुक्तस्वरूप आत्मा है, उसे इसने अनन्त काल में एक सेकेण्ड भी दृष्टि में नहीं लिया। अन्य तो सब कर चुका है परन्तु एक आत्मा को दृष्टि में नहीं लिया है। पूर्व में यहाँ भगवान विराजते थे, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, इन्द्र आदि सभा में सुनने आते थे। उनकी उपस्थिति में भगवान ऐसा फरमाते थे और



वर्तमान में भी महाविदेह में सीमन्धर आदि बीस भगवन्त ऐसा फरमाते हैं कि प्रभु! निश्चयनय से तू मुक्तस्वरूप ही है। यह चार गति का बन्धन और बन्धन का अभाव तेरे स्वरूप में नहीं है। पर्यायनय से बन्धन और मुक्ति है परन्तु वस्तु में नहीं है।

जिस प्रकार यह धूल-मोटी मिट्टी है; उसी प्रकार कर्म, जड़-पुद्गल की बारीक धूल है; इसलिए उसे 'रज' कहा जाता है और पुण्य-पाप के विकल्प को मल कहा जाता है। इस रज और मल से जो रहित हो गये हैं, वे भगवान हैं। लोगस्स में 'विहूयरयमला' आता है, उसका यह अर्थ है। अर्थ की और वस्तु की खबर बिना मुखपाठ बोल जाने से कहीं सिद्धि नहीं है। विहूय, अर्थात् विशेष और रज, अर्थात् आठ कर्म तथा मल, अर्थात् विकारी भाव से जो विशेष प्रकार से रहित हुए हैं - ऐसे भगवान को नमस्कार।

अयथार्थस्वरूप, अर्थात् असद्भूतव्यवहारनय से ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के बन्ध को जीव करता है तथा अशुद्धनिश्चयनय से रागादि भावकर्म को जीव करता है तथा द्रव्यकर्म-भावकर्म से मुक्त भी जीव होता है, तथापि शुद्ध पारणामिकपरमभाव के ग्रहण करनेवाले शुद्धनिश्चयनय से जीव, बन्ध तथा मुक्ति को नहीं करता है। जीव तो बन्ध और मुक्ति से रहित है - ऐसा भगवान ने कहा है।

यह तो अन्तर की बातें हैं, जीव ने कभी सुनी नहीं, ऐसी बातें हैं; इसलिए ध्यान रखकर समझना। भगवान वास्तविकरूप से आत्मा का स्वरूप कैसा कहते हैं? यह इसने कभी सुना नहीं। एक आत्मा का सम्यक् ज्ञान जीव ने किया नहीं, इसके सिवाय दूसरा तो सब कर चुका है। शुभभाव भी इतने किये हैं कि उनके फल में अनन्त बार स्वर्ग में गया परन्तु जन्म-मरण का अन्त नहीं हुआ। अनेक बार राजा हुआ, सेठ हुआ, धूल ऐसे धन का स्वामी हुआ परन्तु भगवान आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान अनन्त काल में कभी नहीं किया।

अनादि काल से जीव को आठ कर्म के साथ व्यवहार से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है; वास्तविक सम्बन्ध नहीं, यह सब बात इस एक गाथा



में कह दी है, परन्तु यह बात अभी तो चलती ही नहीं। लोग तो जैसे धन्धे में हरिफाई करते हैं, वैसे धर्म के बहाने क्रियाकाण्ड करके उसमें हरिफाई में चढ़ गये हैं। भगवान वस्तु का स्वरूप क्या कहते हैं ? उसे किसके साथ क्या सम्बन्ध है ? किस कारण वह भटकता है ? - इसका कुछ विचार ही नहीं करता है।

भगवान कहते हैं प्रभु ! तू तो वस्तुस्वरूप से अनन्त बेहद ज्ञान, आनन्द का कन्द है। तेरे स्वरूप के अज्ञान से अनादि से तुझे अनुपचरित असद्भूत -व्यवहारनय से आठ जड़कर्मों के साथ सम्बन्ध है। अनुपचरित, अर्थात् नजदीक के सम्बन्ध में; असद्भूत, अर्थात् परसत्तावाले जड़कर्मों के साथ; व्यवहार, अर्थात् झूठे नय से जीव को सम्बन्ध हुआ है। स्त्री-पुत्र-धनादिक का सम्बन्ध तो दूर का है; उसकी अपेक्षा आठ कर्म तो जीव के साथ एकक्षेत्रावगाह होने से नजदीक है परन्तु वे जड़-मिट्टी-धूल हैं और आत्मा स्वयं चैतन्य है। इन दोनों को वास्तव में सम्बन्ध कहाँ से होगा ? दोनों की जाति ही अलग है परन्तु रागादि विकार तो जीव के वर्तमान अंश में ही है; इसलिए उनके साथ जीव को अशुद्धनिश्चयनय से सम्बन्ध है।

कर्म के रजकण, जीव के त्रिकालस्वरूप में तो नहीं परन्तु वर्तमान अंश में भी नहीं हैं; इसलिए उनके साथ तो असद्भूत / झूठे नय से सम्बन्ध कहा है परन्तु पुण्य-पाप के विकल्पों की अशुद्धता तो जीव की दशा, अर्थात् वर्तमान अंश में है; इसलिए उसके साथ पर्यायदृष्टि से निश्चय सम्बन्ध है। परन्तु वह अशुद्ध है, इसलिए अशुद्धनिश्चयनय से सम्बन्ध कहा है।

व्यापार में पैसा कमाने के लिये मजदूरी करके मर जाता है परन्तु इस स्वरूप को समझने में मेहनत करना नहीं रुचती है। व्यापार में तो मजदूरी, अर्थात् राग-द्वेष और संकल्प-विकल्प किया करता है, वही मजदूरी है। वरना पैसा कमाना, वह कहीं इसके हाथ में नहीं है। जड़ व्यापार की व्यवस्था जड़ से होती है; आत्मा उसमें कुछ नहीं कर सकता। आत्मा तो संकल्प-विकल्प के झूले में झूलता है।

देखो, यह गाथा बहुत अलौकिक है। इसमें तो परमात्मा का प्रकाश है।



शुभ-अशुभभाव की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वह भावकर्म है। जीव की पर्याय में होनेवाले भाव होने पर भी, वह मल होने से उसे भावकर्म कहते हैं। वह पर्याय का कार्य है; द्रव्य का कार्य नहीं। द्रव्य वस्तु में पर्याय नहीं, द्रव्य तो द्रव्य ही है, उसमें विकार नहीं; पर्याय में विकार होता है।

जो है, वह सत् है; सत् है, वह अनादि अनन्त है। जीव एक सत् है, उसमें बेहद ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि गुण रहे हुए हैं, वह उनका सत्व है। उसकी वर्तमान दशा में कर्म का सम्बन्ध है परन्तु कर्म भिन्नरूप से रहे होने से उसके साथ सम्बन्ध कहना, वह असद्भूत व्यवहारनय है और जीव की पर्याय में, यह पुण्य से और इसके फल से मुझे मजा है, विकल्प से मुझे ठीक है - ऐसा जो मिथ्यादृष्टि था, मिथ्यात्वभाव है, वह अपने अंश में होने से उसके साथ जीव को निश्चयसम्बन्ध कहा है और वह भाव, मलिन होने से उसे अशुद्धनिश्चयनय से जीव का कहा है।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यभाग में पूर्ण घन आनन्दकन्द वस्तु है। उसका आनादर करके शुभाशुभभाग का प्रेम करता है, उसमें तेरे जीवत्व का घात होता है। यह मैं नहीं, यह मैं नहीं - ऐसे जीवत्व के घात में अनन्त काल व्यतीत हुआ। अनन्त काल में कभी इसने द्रव्य की ओर लक्ष्य और ध्येय नहीं किया। पर्याय तो क्षणमात्र की है, भले सिद्ध की पर्याय हो, वह भी प्रतिसमय नयी-नयी होती है। जब से सिद्ध हो, तब से प्रतिसमय नयी-नयी सिद्धपर्याय हुआ करती है; इसलिए कहा कि आत्मा में अनन्त परमात्मा रहे हुए हैं। आत्मा की ऐसी अनन्तता की अज्ञानी को खबर ही नहीं है।

ऐसे बेहद स्वभाव से पूर्ण आत्मतत्त्व का आदर नहीं करके वर्तमान अंश में, अंश का आदर किया, वह मिथ्यात्वभाव है; वह मिथ्यात्वभाव, अशुद्धनिश्चयनय से जीव में है परन्तु शुद्धनिश्चयनय से वह जीव में नहीं है। 'शुद्धनिश्चय, अर्थात् शुद्धसत्' उसका स्वरूप जाने बिना जीव ने चौरासी के अवतार में कोई अवतार बाकी नहीं रखा, इतने अवतार कर लिये हैं, यह बात बाद में कहेंगे।

क्रमशः



दशलक्षण महापर्व के अवसर पर—

धर्म की कमाई का अवसर

आत्मा का अनुभव करके मोक्ष को साधने का यह मौसम है। श्रीगुरु -सन्तों के प्रताप से सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न प्राप्त होता है और अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ होता है - ऐसा यह अवसर है; धर्म की कमाई का यह अवसर है... उसे हे जीव! तू चूकना मत... प्रमाद मत करना... अन्यत्र कहीं मत रुकना।

अरे, ऐसा मनुष्यपना और सत्यधर्म के श्रवण का एक-एक क्षण महाकीमती है, अरबों रत्न देने पर भी ऐसा एक क्षण मिलना मुश्किल है। भगवान! ऐसा मनुष्यपना तू बाहर के व्यापार में व्यतीत करता है, उसके बदले आत्मा के लाभ का व्यापार कर... उपयोग को अन्तर में झुकाकर आत्मा का ग्राहक हो... पर का ग्राहक माना है, वह छोड़ दे और आत्मा का ग्राहक शीघ्र हो। इसमें एक क्षण का प्रमाद मत कर। एक क्षण की कमाई से तुझे अनन्त काल का सिद्धसुख मिलेगा।

भाई! इस मनुष्यपने का अल्प काल तो आत्महित का मौसम है; धर्म की कमाई का यह अवसर है। इसमें जिसने धर्म की कमाई नहीं की, अर्थात् भव-भ्रमण के अभाव का और मोक्षसुख की प्राप्ति का उपाय जिसने नहीं किया, उसके मनुष्यपने को धिक्कार है।

अरे जीव! परद्रव्य के ग्रहण की बुद्धि से तो तू संसार के दुःख में पिल रहा है; इसलिए पर की ग्राहकता तू शीघ्रता तो छोड़ और शीघ्रता से स्वद्रव्य का ग्राहक हो। अरे! आत्मा को भूलकर तूने अनन्त काल से भावमरण किया, अब तो स्व-पर की भिन्नता को जानकर, तू तेरे आत्मा को भावमरण से बचा, स्वद्रव्य का शीघ्रता से रक्षक हो और परद्रव्य का रक्षकपना छोड़ दे।

हे जीव! स्वद्रव्य को पर से अत्यन्त भिन्न जानकर, तू शीघ्रता से स्वद्रव्य का रक्षक हो... व्यापक हो... धारक हो... रमक हो... ग्राहक हो... परद्रव्य से सर्व प्रकार से विरक्त हो।



बाहर की परभाव की रमणता छोड़... और स्वद्रव्य में रमणता कर। 'राणा! क्रीड़ा छोड़... सेना आयी किनारे।' यह तेरे जीवन का किनारा नजदीक आता है, इसलिए तू राग की क्रीड़ा शीघ्रता से छोड़ दे और रमणीय चैतन्यधाम में तू शीघ्र रमणता कर।

अहो! यह तो वीतरागमार्ग का प्रवाह है। अकेला चैतन्य का वीतरागरस इसमें भरा है। भगवान के पास से यह वीतरागरस का प्रवाह आया है। इस वीतरागरस के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन भी धर्मी को नीरस लगते हैं। अपूर्व आनन्दरस की धारा आत्मा में से बहती है, उसका लक्ष्य तो करो! आत्मा के स्वभाव की ऐसी बात सुनकर बहुमान करनेवाले भी महाभाग्यशाली हैं और जिन्होंने ऐसा आत्मा लक्ष्य में लिया, वे सर्व परभाव से विरक्त होकर परम अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त करते हैं। इन्द्रिय के अवलम्बनवाला ज्ञान भी जिसे नहीं जान सकता - ऐसा भगवान आत्मा, उसका ग्राहक होकर परभाव का ग्रहण छोड़। जहाँ इन्द्रियज्ञान भी मेरा स्वरूप नहीं, वहाँ अन्य रागादि परभावों की अथवा इन्द्रियों की क्या बात? इस प्रकार परभावों से भिन्न होकर आत्मा को ग्रहण कर... तो तेरी पर्याय में परम आनन्द से भरपूर वीतरागरस का प्रवाह बहेगा।

आत्मा तो चैतन्य हीरे का महापर्वत है, उसे खोदने पर उसमें से तो सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानादि हीरे निकलते हैं, उसमें रागादि नहीं निकलते। ऐसे चैतन्य हीरे का पर्वत खुल्ला करके सन्त बतलाते हैं कि भाई! तुझमें भरी हुई यह चैतन्य हीरे की खान जरा खोलकर देख तो सही! (पूज्य गुरुदेवश्री ने थोड़े समय पहले मंगल स्वप्न में विशाल पहाड़ देखा, उसका जरा सा भाग खुल्ला करने पर अन्दर अकेले हीरे ही भरे हुए थे, उसे अनुलक्ष्य करके बहुत प्रमोद से गुरुदेवश्री कहते हैं कि) अहो! आत्मा तो अनन्त गुण के चैतन्य हीरे से भरपूर महापर्वत है, उसे खोलकर देखने पर उसमें से अकेले केवलज्ञानादि हीरे ही भरे हैं - ऐसे आत्मा को लक्ष्य में तो लो! थोड़ा सा भाग खुल्ला करके नमूना बताया तो अब अपने सम्पूर्ण आत्मा को लक्ष्य में लेकर उसकी परम महिमा करो।



अपना या पर का आत्मा इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। अपने आत्मा को जिसने स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष किया है, वही दूसरे आत्मा का सच्चा अनुमान कर सकता है। जिसने अपने आत्मा को अनुभव में नहीं लिया, वह दूसरे धर्मात्माओं को भी नहीं पहचान सकता। प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान सच्चा होता है; प्रत्यक्षरहित अकेला अनुमान, वह सच्चा नहीं है।

स्वसन्मुख होकर आत्मा को प्रत्यक्ष किये बिना जीव ने बाहर की जानकारी अनन्त बार की और उसमें सन्तोष मान लिया। अरे! आत्मा की प्रत्यक्षता रहित ज्ञान, वह वास्तव में ज्ञान ही नहीं; इसलिए 'जब तक मेरा आत्मा मुझे प्रत्यक्ष न हो, तब तक मैंने वास्तव में कुछ जाना ही नहीं' – ऐसा जब तक जीव को अपना अज्ञानपना भासित न हो और दूसरे परलक्ष्यी जानपने में अपनी अधिकाई मानकर सन्तुष्ट हो जाये, तब तक आत्मा का सच्चा मार्ग जीव को हाथ में नहीं आता। अन्तर में परमस्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा में सन्मुख होने से ही परम तत्त्व की प्राप्ति होती है और मोक्षमार्ग हाथ में आता है। भाई! तेरे आत्मा के सन्मुख देखे बिना, अर्थात् स्वसंवेदन प्रत्यक्ष किये बिना, अज्ञानदशा की क्रिया में ऊँचे शुभभाव भी तूने किये, ग्यारह अंग का जानपना किया परन्तु उससे आत्मा के कल्याण का मार्ग किंचित् भी तेरे हाथ में नहीं आया; इसलिए ज्ञान को पर-विषयों से भिन्न करके, स्व-विषय में जोड़। इन्द्रियज्ञान के व्यापार में ऐसी ताकत नहीं है कि आत्मा को स्व-विषय बनाकर जाने। तू परमात्मा, तुझे स्वयं अपना ज्ञान करने के लिये इन्द्रियों से या राग से भीख माँगना पड़े – ऐसा भिखारी तू नहीं है। आहा! सन्त कहते हैं कि तू भिखारी नहीं परन्तु भगवान है।

अज्ञानियों को अनुमान में आ जाये – ऐसा यह आत्मा नहीं है। अकेले परज्ञेय को अवलम्बन करनेवाला ज्ञान, वह अज्ञान है; वह ज्ञान नहीं। ज्ञान का भण्डार आत्मा, वह स्वयं अपने ज्ञानस्वभाव को अवलम्बन कर जिस ज्ञानरूप परिणमता है, वही ज्ञान, मोक्ष को साधनेवाला है।



इस शरीर को घट कहा जाता है, घट की तरह यह क्षणिक-नाशवान है। यह घट और घट को जाननेवाला, ये दोनों एक नहीं, किन्तु पृथक् हैं। शरीर के अंगभूत इन्द्रियाँ, वे कहीं आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति का साधन नहीं हैं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी आत्मा है, उसे साधन बनाकर जो ज्ञान हो, वही आत्मा को जाननेवाला है। पुण्य-पाप भी उसका स्वरूप नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञान ऐसा नहीं है कि पुण्य-पाप की रचना करे। राग की रचना, वह आत्मा का कार्य नहीं; आत्मा का वास्तविक कार्य (अर्थात् परमार्थ लक्षण) तो अतीन्द्रिय ज्ञानचेतना है; उस चेतनास्वरूप को अनुभव में लेते ही आत्मा सच्चे स्वरूप से अनुभव में आता है - ऐसे आत्मा को अनुभव में ले, तभी जीव को धर्म होता है।

आत्मा स्वयं उपयोगस्वरूप है। उसे पर का अवलम्बन नहीं है; बाहर से वह उपयोग को लाता नहीं है। अन्तर की एकाग्रता द्वारा जो उपयोग काम करता है, वही आत्मा का स्वलक्षण है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान का धनी भगवान अशरीरी आत्मा, अपने को भूलकर, शरीर धारण कर-करके भव में भटके, यह तो शर्मजनक है, यह कलंक आत्मा को शोभा नहीं देता।

बापू! तू अशरीरी चैतन्य भगवान; तेरा चैतन्य उपयोग, शरीर में से - इन्द्रियों में से या राग में से नहीं आता; ऐसे आत्मा के संस्कार अन्तर में जिसने डाले होंगे, उसे परभव में भी वे संस्कार साथ रहेंगे। इसलिए बारम्बार अभ्यास करके ऐसे आत्मस्वभाव के संस्कार अन्दर में दृढ़ करनेयोग्य है। बाहर की पढ़ाई से वह ज्ञान नहीं आता; वह तो अन्तर के स्वभाव से ही खिलता है। अन्तर में स्वभाव के घोलन के संस्कार बारम्बार अत्यन्त दृढ़ करने पर, वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य होते हैं, वही धर्म की सच्ची कमाई है और ऐसी धर्म की कमाई का यह अवसर है।

- सम्यग्दर्शन, गुजराती, भाग-4, पूज्य गुरुदेवश्री का विशिष्ट प्रवचन



पूज्य गुरुदेवश्री का प्रेरणास्पद प्रवचन
आत्महिताभिलाषी का प्रथम कर्तव्य :

तत्त्वनिर्णय

तत्त्वनिर्णयरूप धर्म तो बालक-वृद्ध; रोगी-निरोगी; धनवान-निर्धन; सुक्षेत्री तथा कुक्षेत्री आदि सभी अवस्था में प्राप्त होने योग्य हैं, इसलिए जो पुरुष अपना हित चाहता है, उसे सबसे पहले यह तत्त्वनिर्णयरूप कार्य ही करना योग्य है। तत्त्वज्ञानतरंगिणी में कहा है कि —

न क्लेशों न धनव्ययो न गमनं देशान्तरे प्रार्थना ।
केषांचिन्न बलक्षयो न तु भयं पीडा न कस्माश्च न ॥
सावद्यं न न रोग जन्मपतनं नैवान्य सेवा न हि ।
चिद्रूपं स्मरणे फलं बहुतरं किन्नाद्रियंते बुधाः ॥

अर्थात् — चिद्रूप (ज्ञानस्वरूप) आत्मा का स्मरण करने में न तो क्लेश होता है, न धन खर्च करना पड़ता है, न ही देशान्तर में जाना पड़ता है, न किसी के समक्ष प्रार्थना करनी पड़ती है, न बल का क्षय होता है, न ही किसी ओर से भय अथवा पीडा होती है और वह सावद्य (पाप का कार्य) भी नहीं है, उससे रोग अथवा जन्म-मरण में पड़ना नहीं पड़ता, किसी की सेवा नहीं करनी पड़ती, ऐसी बिना किसी कठिनाई के ज्ञानस्वरूप आत्मा के स्मरण का बहुत फल है, तब फिर समझदार पुरुष उसे क्यों नहीं ग्रहण करते ?

और फिर जो तत्त्वनिर्णय के सन्मुख नहीं हुए हैं, उन्हें जागृत करने के लिये उलाहना दिया है कि —

साहीणे गुरु जोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाई ।
ते धिदुदु चित्ता अह सुहडा भवभय विहुणा ॥

अर्थात् — स्वाधीन गुरु का योग होने पर भी, जो धर्म-वचनों को नहीं सुनते, वे धीठ और दुष्ट चित्तवाले हैं अथवा वे भवभयरहित, अर्थात् जिस संसारभय से तीर्थङ्करादि डरे, उससे भी नहीं डरनेवाले सुभट हैं । —



ऐसा कहकर उन पर कटाक्ष किया है।

जो शास्त्राभ्यास के द्वारा तत्त्वनिर्णय तो नहीं करते और विषय-कषाय के कार्यों में ही मग्न रहते हैं, वे अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि हैं तथा जो सम्यग्दर्शन के बिना पूजा, दान, तप, शील, संयमादि व्यवहारधर्म में (शुभभाव में) मग्न हैं, वे शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिए भाग्योदय से जिनने मनुष्य पर्याय प्राप्त की है, उनको तो सर्वधर्म का मूलकारण, सम्यग्दर्शन; और उसका कारण, तत्त्वनिर्णय; तथा उसका भी जो मूलकारण, सत्समागम और शास्त्राभ्यास है, वह अवश्य करना योग्य है, किन्तु जो ऐसे अवसर को व्यर्थ गँवाते हैं, उन पर बुद्धिमान, करुणा करते कहते हैं कि —

प्रज्ञैव दुर्लभा सुष्ठु दुर्लभा सान्यजन्मने।

तां प्राप्त ये प्रमाद्यंति ते शोच्याः खलु धीमताम् ॥

(—आत्मानुशासन, श्लोक-94)

अर्थात् — प्रथम तो संसार में बुद्धि का होना ही दुर्लभ है और फिर उसमें भी परलोक के लिये बुद्धि का होना तो अति दुर्लभ है; ऐसी बुद्धि पाकर, जो प्रमाद करते हैं, उन जीवों के विषय में ज्ञानियों को शोच होता है।

यह दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर जिसे सच्चा जैनी होना है, उसे तो सत्समागम और शास्त्र के आधार से तत्त्वनिर्णय करना उचित है, किन्तु जो तत्त्वनिर्णय तो नहीं करता और पूजा, स्तोत्र, दर्शन, त्याग, वैराग्य, संयम, सन्तोष आदि सभी कार्य करता है, उसके ये सब कार्य, असत्य हैं, उनसे मोक्ष नहीं है।

इसलिए सत्समागम से आगम का सेवन, युक्ति का अवलम्बन, परम्परा से गुरुओं के उपदेश और स्वानुभव के द्वारा तत्त्व का निर्णय करना चाहिए। जिनवचन तो अपार है, उसका पूरा पार तो श्री गणधरदेव भी प्राप्त नहीं कर सके, इसलिए जो मोक्षमार्ग की प्रयोजनभूत रकम (बात, माल) है, उसे निर्णयपूर्वक अवश्य जानना योग्य है। कहा भी है कि —



अंतो णत्थि सुईणं कालो थोओवयं च दुम्मेहा ।
तंणवर सिक्खियव्यं जिं जरमरणक्खयं कुणहि ॥

(— पाहुड़ दोहा-98)

अर्थात् — श्रुतियों का अन्त नहीं है, काल थोड़ा है और हम निर्बुद्धि (अल्पबुद्धिवाले) हैं, इसलिए हे जीव! तुझे तो वह सीखना योग्य है कि जिससे तू जन्म-मरण का नाश कर सके।

आत्महित के लिये सर्व प्रथम सर्वज्ञ का निर्णय

हे जीवों! तुम्हें यदि अपना भला करना हो तो सर्व आत्महित का मूलकारण जो आस हैं, उसके सच्चे स्वरूप का निर्णय करके, ज्ञान में लाओ, क्योंकि सर्व जीवों को सुख, प्रिय है; सुख, भावकर्मों के नाश से प्राप्त होता है; भावकर्मों का नाश, सम्यक्चारित्र से होता है; सम्यक्चारित्र, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानपूर्वक होता है; सम्यग्ज्ञान, आगम से होता है; आगम, किसी वीतराग पुरुष की वाणी से उत्पन्न होता है और वह वाणी, किसी वीतराग पुरुष के आश्रित है; इसलिए जो सत्पुरुष हैं, उन्हें अपने कल्याण के लिये सर्वसुख का मूलकारण जो आस-अरहन्त सर्वज्ञ हैं, उनका युक्तिपूर्वक भलीभाँति सर्व प्रथम निर्णय करके आश्रय लेना योग्य है।

अब जिनका उपदेश सुनते हैं और जिनके कहे हुए मार्ग पर चलना चाहते हैं तथा जिनकी सेवा, पूजा, आस्तिकता, जाप, स्मरण, स्तोत्र, नमस्कार और ध्यान करते हैं — ऐसे जो अरहन्त सर्वज्ञ हैं, उनका स्वरूप पहले अपने ज्ञान में तो प्रतिभासित हुआ ही नहीं है, तब फिर तुम उनका निश्चय किये बिना किसका सेवन करते हो ?

लोक में भी ऐसी पद्धति है कि अत्यन्त निष्प्रयोजन बात का भी निर्णय करके प्रवृत्ति की जाती है और इधर तुम आत्महित के मूल आधारभूत अरहन्तदेव का निर्णय किये बिना ही प्रवृत्ति कर रहे हो, यह बड़ा ही आश्चर्य है !

और फिर तुम्हें निर्णय करने योग्य ज्ञान भी प्राप्त हुआ है; इसलिए तुम इस अवसर को वृथा मत गँवाओ। आलस्य आदि छोड़कर उसके निर्णय



में अपने को लगाओ, जिससे तुम्हें वस्तु का स्वरूप; जीवादि का स्वरूप; स्व-पर का भेदविज्ञान; आत्मा का स्वरूप; हेय-उपादेय और शुभ-अशुभ-शुद्ध-अवस्थारूप अपने पद-अपद का स्वरूप, इन सबका सर्व प्रकार से यथार्थ ज्ञान हो। सर्व मनोरथ सिद्ध करने का उपाय जो अरहन्त सर्वज्ञ का यथार्थ ज्ञान है, वह जिस प्रकार से सिद्ध हो, वह प्रथम करना योग्य है।

इस प्रकार सबसे पहले अरहन्त सर्वज्ञ का निर्णय करनेरूप कार्य करना चाहिए, यही श्रीगुरु की मूल शिक्षा है।
सच्चा ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है

अपने-अपने प्रकरण में अपने-अपने ज्ञेयसम्बन्धी अल्प अथवा विशेष ज्ञान सबको होता है क्योंकि लौकिक कार्य तो सभी जीव जानपने पूर्वक ही करते हैं; इसलिए लौकिक जानपना तो सभी जीवों के थोड़ा-बहुत हो ही रहा है, किन्तु मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत जो आस, आगम आदि पदार्थ हैं, उनका यथार्थ ज्ञान, सम्यग्दृष्टि को ही होता है तथा सर्व ज्ञेय का ज्ञान, केवली भगवान को ही होता है — ऐसा जानना चाहिए।

जिनमत की आज्ञा

कोई कहता है कि सर्वज्ञ की सत्ता का निश्चय हम से नहीं हुआ तो क्या हुआ? वे तो सच्चे हैं न? इनकी पूजन आदि करना निष्फल थोड़े ही जाता है?

उत्तर — जो तुम्हारी किञ्चित् मन्दकषायरूप परिणति होगी तो पुण्यबन्ध तो होगा, किन्तु जिनमत में तो देव के दर्शन से आत्मदर्शनरूप फल होना कहा है, वह तो नियम से सर्वज्ञ की सत्ता जानने से ही होगा, अन्य प्रकार से नहीं; यही श्री प्रवचनसार, गाथा -80 में कहा है।

फिर तुम लौकिक कार्यों में तो इतने चतुर हो कि वस्तु की सत्ता आदि का निश्चय किये बिना सर्वथा प्रवृत्ति नहीं करते और यहाँ तुम सत्ता का



निश्चय भी न करके सयाने अनध्यवसायी (बिना निर्णय के) होकर प्रवृत्ति करते हो, यह बड़ा आश्चर्य है ! श्री श्लोकवार्तिक में कहा है कि - जिसके सत्ता का निश्चय नहीं हुआ, परीक्षक को उसकी स्तुति आदि कैसे करना उचित है ? इसलिए तुम सर्व कार्यों से पहले, अपने ज्ञान में सर्वज्ञ की सत्ता को सिद्ध करो, यही धर्म का मूल है और यही जिनाम्नाय है ।
आत्मकल्याण के अभिलाषियों से....

जिन्हें आत्मकल्याण करना है, उन्हें पहले जिनवचनरूप आगम का सेवन, युक्ति का अवलम्बन, परम्परा गुरु का उपदेश तथा स्वानुभव, यह कर्तव्य है । प्रथम प्रमाण-नय-निक्षेप आदि उपाय से वचन की सत्यता का अपने ज्ञान में निर्णय करके, गम्यमान हुए सत्यरूप साधन के बल से उत्पन्न जो अनुमान है, उससे सर्वज्ञ की सत्ता को सिद्ध करके, उसका श्रद्धान-ज्ञान-दर्शन, पूजन, भक्ति और स्तोत्र, नमस्कारादि करना योग्य है ।

श्री जिनेन्द्रदेव का सेवक जानता है कि मेरा भला-बुरा मेरे परिणामों से ही होता; ऐसा समझकर वह अपने हित के उपाय में प्रवर्तता है तथा अशुद्ध कार्यों को छोड़ता है ।

जिसे जिनदेव का सच्चा सेवक होना हो तथा जिनदेव के द्वारा उपदिष्ट मोक्षमार्गरूप प्रवृत्ति करना हो, उसे सबसे पहले जिनदेव के सच्चे स्वरूप का अपने ज्ञान में निर्णय करके, उसका श्रद्धान करना चाहिए, उसका यही कर्तव्य है ।

(सम्यग्दर्शन, भाग-1, गुजराती, पृष्ठ 7 से 10)

आगामी कार्यक्रम

भीलवाड़ा में प्रतिष्ठा महोत्सव : दिसम्बर माह में

भीलवाड़ा : श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन आत्मार्थी ट्रस्ट भीलवाड़ा द्वारा निर्मित श्री सीमन्धर जिनालय में स्थापित होनेवाले जिनबिम्बों का पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आगामी दिनाङ्क 24 से 30 दिसम्बर 2012 तक अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्वक सम्पन्न होगा । इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन एवं देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों का मङ्गल सान्निध्य प्राप्त होगा । इस अवसर पर समस्त साधर्मी बन्धुओं से भीलवाड़ा पधारने का विनम्र अनुरोध है ।



जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व : जीवतत्त्व

गताङ्क से आगे...

समाधितन्त्र ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन

बहिरात्मा जीव की मिथ्याबुद्धि का वर्णन

अब बहिरात्मपना छुड़ाने के लिये, आचार्यदेव उसका स्वरूप स्पष्टरूप से बतलाते हैं, उसमें पहले यह बतलाते हैं कि बहिरात्मा को देह में ही आत्मबुद्धि क्यों हो रही है ?

बहिरात्मेन्द्रियद्वारैरात्मज्ञानपराङ्मुखः ।

स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति ॥7 ॥

बहिरात्मा, अपने आत्मज्ञान से पराङ्मुख वर्तता हुआ, इन्द्रियों द्वारा शरीरादि बाह्य पदार्थों को ही जानने में तत्पर है, आत्मा को तो वह देखता नहीं; इसलिए वह शरीर को ही आत्मारूप से मान लेता है, उसे देहाध्यास हो गया है; इसलिए देह से अपना भिन्नपना उसे भासित नहीं होता है। ज्ञान को, ऐसे बाहर में ही जोड़ता है परन्तु अन्तरोन्मुख नहीं करता। बाहर में इन्द्रियों के अवलम्बन से तो जड़ दिखता है, कहीं आत्मा नहीं दिखता; इसलिए उस बहिरात्मा को शरीर से पृथक् आत्मा का अस्तित्व भासित ही नहीं होता। वह तो शरीर को ही आत्मा मानता है। अरे, कैसा भ्रम! कि अपने अस्तित्व को ही स्वयं भूल गया! और जड़ में ही अपना अस्तित्व मान बैठा! उसे समाधि कहाँ से हो ?

यह समाधिशतक है, इसमें आत्मा को समाधि कैसे हो ? - यह बतलाते हैं। समाधि, स्वाधीन है - आत्मा के आधीन है, बाह्य के आधीन नहीं है; देहादिक से भिन्न अनन्त ज्ञान आनन्द सम्पन्न मेरा अस्तित्व है, इसके भानपूर्वक आत्मा में एकाग्रता रहे, उसका नाम समाधि है परन्तु देहादिक से भिन्न आत्मा को भूलकर, शरीरादि परद्रव्यों को ही जो आत्मा मानता है, उसे बाह्य विषयों में से एकाग्रता नहीं छूटती और आत्मा में एकाग्रता नहीं होती; इसलिए उसे समाधि नहीं होती। उसके आत्मा में तो असमाधि का तन्त्र रहता है। मिथ्यात्वादि भाव, असमाधि है; चैतन्यस्वभाव की सन्मुखता से सम्यक्त्व आदि भाव प्रगट हों, वह समाधि है।



बहिरात्मा जीव, इन्द्रिय द्वारा ही ज्ञान की प्रवृत्ति करता है; इसलिए उसका ज्ञान अकेले बाह्य पदार्थों में ही प्रवर्तता है परन्तु आत्मसन्मुख होकर नहीं वर्तता। आत्मा से पराङ्मुख होकर, इन्द्रियों द्वारा अकेले देहादि पदार्थों को ग्रहण करके 'वही मैं हूँ' - ऐसा अज्ञानी मानता है। शरीर से भिन्न अतीन्द्रिय आत्मा तो उसे इन्द्रियों द्वारा भासित होता नहीं है।

जीवस्वरूप का ज्ञान तो अतीन्द्रिय अन्तर्मुखज्ञान से ही होता है; बहिर्मुख इन्द्रियज्ञान से नहीं होता है। अज्ञानी अपने ज्ञानस्वभाव को नहीं जानता परन्तु इन्द्रियों को ही ज्ञान का साधन मानता है; इसलिए इन्द्रियों द्वारा ज्ञात इन देहादिक को ही अपना स्वरूप मानता है। देहादिक तो जड़ हैं, वे कहीं आत्मा नहीं हैं; आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं परन्तु अज्ञानी को इन्द्रियज्ञान द्वारा देह से पृथक् आत्मा दिखायी नहीं देता; इसलिए देह के अस्तित्व में ही अपना अस्तित्व मानता है। शरीर की क्रियाएँ, वे मानों आत्मा का ही कार्य हो - ऐसा अज्ञानी को भ्रम है। मैं इन्द्रियों से ही जानता हूँ, इसलिए इन्द्रियाँ ही आत्मा हैं - ऐसा उसे भ्रम है। इस प्रकार अज्ञानी जीव, अपनी देह को ही आत्मा मानता है तथा पर में भी देह को ही आत्मा मानता है, देह से भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्मा को वह नहीं पहचानता; इसलिए दूसरे आत्मा को भी वैसे स्वरूप से नहीं पहचानता। स्वयं अपने आत्मज्ञान से पराङ्मुख वर्तता होने से और इन्द्रियज्ञान द्वारा अकेली बहिर्मुख प्रवृत्ति ही करता होने से, अज्ञानी जीव, देहादिक को ही आत्मा मानता है; देह से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को वह जानता नहीं है।

देखो, अज्ञानी को बहिरात्मपना है, वह बहिरात्मपना, कर्म इत्यादि पर के कारण नहीं है परन्तु स्वयं ही अपने आत्मा से विमुख होकर इन्द्रियों द्वारा बाह्य पदार्थों को ही ग्रहण करता है; इसलिए वह देहादिक को ही आत्मा मानता है, इस कारण वह बहिरात्मा है। ज्ञान को अन्तर्मुख करके जाने तो उस अतीन्द्रियज्ञान द्वारा देहादिक से भिन्न चिदानन्दस्वरूप आत्मा का स्वसंवेदन हो, अर्थात् बहिरात्मपना मिटकर अन्तरात्मपना हो।

जो जीव, इन्द्रियों को ज्ञान का कारण मानता है, उसे इन्द्रिय-विषयों



के ही पोषण का अभिप्राय है। इन्द्रिय के विषय अनुकूल हों तो इन्द्रियाँ पुष्ट रहे और इन्द्रियाँ पुष्ट हों तो ज्ञान अच्छा हो - ऐसा अज्ञानी मानता है; इसलिए वह इन्द्रियों को ही आत्मा मानता है और इन्द्रिय द्वारा ही उसका ज्ञान प्रवर्तित होने से अकेले बाह्य विषयों में ही वह वर्तता है; इसलिए अन्तर के चैतन्य विषय को जानने के लिये उसका ज्ञान 'नापास' (फेल) है। चैतन्य को जानने की परीक्षा में वह फेल होता है। भले ही मेट्रिक आदि बड़ी परीक्षा में पहले नम्बर से उत्तीर्ण हो परन्तु यदि चैतन्यतत्त्व को नहीं जाना तो उसका ज्ञान अनुत्तीर्ण ही है - मिथ्या ही है और अनपढ़ हो, लिखना-पढ़ना भी न आता हो परन्तु ज्ञान को अन्तर्मुख करके यदि चैतन्यविषय को ही जानता है तो उसका ज्ञान उत्तीर्ण है, उसका ज्ञान-मोक्ष का कारण है। जो ज्ञान, मोक्ष का कारण हो, वही सच्ची विद्या है। इसके अतिरिक्त लौकिक विद्या चाहे जितनी पढ़े तो भी आत्मविद्या में तो वह अनुत्तीर्ण ही है। उसकी पढ़ाई, कुविद्या ही है।

अरे! अपने चैतन्यतत्त्व को चूककर, देहादिक में ही आत्मबुद्धि से अज्ञानी जीव प्रतिक्षण भयंकर भावमरण में मर रहा है। बाह्य विषयों में से सुख लेना चाहता है परन्तु उसमें तो अन्तर का वास्तविक सुख विस्मृत हो जाता है; इन्द्रियज्ञान द्वारा इन्द्रिय-विषयों को ही जानता है और उनमें से सुख लेना चाहता है परन्तु उसमें तो अपने चैतन्य प्राण का घात होता है- आत्मा के आनन्द का हनन होता है और दुःख होता है, इसका विचार भी अज्ञानी को नहीं है। चैतन्य के भान बिना व्रतादि भी यथार्थ नहीं होते हैं। चैतन्य-सन्मुख वृत्ति झुके बिना, बाह्य विषयों के त्यागरूप व्रत भी नहीं होते। चैतन्यस्वभाव की सन्मुखता रहित अज्ञानी, व्यवहार से व्रतादि पाले तो भी वह इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में ही वर्तता है, क्योंकि इन्द्रियों से पृथक् आत्मा का स्वसंवेदनज्ञान तो उसे है नहीं।

आत्मा, देहादिक से पृथक् है - ऐसा भले ही शास्त्रादिक से कहे परन्तु इन्द्रियों से, राग से ज्ञान माने तो वह जीव, देहादिक को ही आत्मा मानता है। देह से पृथक् आत्मा को वह नहीं मानता है। देह से भिन्न आनन्दस्वरूप



आत्मा, इन्द्रियों द्वारा या राग द्वारा ज्ञात नहीं होता; अन्तर्मुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही आत्मा ज्ञात होता है और जो ऐसे आत्मा को जानता है, उसे ही चैतन्य के आश्रय से वीतरागी समाधि रहती है। देहादिक की मूर्च्छा छोड़कर चैतन्य में सावधान हुआ, वही समाधि है।

आत्मज्ञान से विमुख होने से और इन्द्रियज्ञान द्वारा ही जानता होने से, अज्ञानी जीव, देह से भिन्न अपने आत्मा को नहीं जानता, शरीर को ही आत्मा मानता है; तथा दूसरे में भी इसी प्रकार से शरीर को ही आत्मा मानता है और आत्मा को ही मनुष्यादिरूप मानता है परन्तु आत्मा का वास्तविकस्वरूप ऐसा नहीं है, यह बात अब आठवीं और नौवीं गाथा में कहते हैं -

नरदेहस्थमात्मानमविद्वान्मन्यते नरम्।

तिर्यचं तिर्यगंगस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा ॥८ ॥

नारकं नारकांगस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।

अनंतानंतधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः ॥९ ॥

देखो! यह अविद्वान जीव की मान्यता! जो अन्तर्मुख होकर अतीन्द्रिय आत्मा को नहीं जानता और देहादिक को ही आत्मा मानता है, वह भले ही चाहे जितने शास्त्र पढ़ा हो, तथापि अविद्वान है-मूर्ख है-मिथ्यादृष्टि है।

पहले ऐसा कहा कि ज्ञान को स्वसन्मुख करके जो अपने आत्मा को नहीं जानता, वह अपने शरीर को ही आत्मा मानता है और इस प्रकार जो अपने में शरीर को ही आत्मा मानता है, वह दूसरों में भी मनुष्य, देव इत्यादि के शरीर को ही आत्मा मानता है, अर्थात् देह तथा आत्मा को अभेद मानता है।

जो जीव, बाह्यदृष्टिवाला अविद्वान है, वह नरदेह में रहनेवाले आत्मा को नर मानता है; इसी प्रकार तिर्यचशरीर में रहनेवाले आत्मा को तिर्यच मानता है; देवशरीर में रहनेवाले आत्मा को देव मानता है तथा नारकशरीर में रहनेवाले आत्मा को नारकी मानता है परन्तु आत्मा तो इस देह से भिन्न अनन्तानन्त ज्ञानादि शक्तिसम्पन्न स्वसंवेद्य अचल स्थितिवाला है, उसे वह नहीं जानता है। शरीर तो अल्प अवधिवाला जड़ है और आत्मा तो धारावाही स्थितिवाला चैतन्यशक्ति सम्पन्न है; इस प्रकार दोनों की भिन्नता को अज्ञानी



नहीं पहचानता है और इस प्रकार चिदानन्द शक्ति सम्पन्न आत्मा को जो नहीं पहचानता, वह भले ही लाखों शास्त्र पढ़ा हुआ बड़ा विद्वान गिना जाता हो तो भी वस्तुतः वह अविद्वान ही है, उसे चैतन्यविद्या का पता नहीं है।

अन्दर में मेरा आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय भगवान है - ऐसा जो नहीं जानता, वह मूढ़-बहिरात्मा बाहर में जड़ शरीर को ही आत्मा मानता है; इस मनुष्यदेह में रहनेवाला आत्मा तो मनुष्यदेह से पृथक् ज्ञानस्वरूप है, उसे नहीं पहचानकर 'आत्मा ही मनुष्य है' - ऐसे शरीर को ही आत्मा मान रहा है। जो, जाननहार स्वरूप आत्मा को नहीं जानता, उसे धर्म बिल्कुल नहीं होता है।

हाथी का शरीर देखे वहाँ 'यह जीव हाथी है' इस प्रकार आत्मा को ही हाथी इत्यादि तिर्यचरूप मानता है; देवशरीर में आत्मा रहा, वहाँ आत्मा ही मानो देवशरीररूप हो गया - ऐसा अज्ञानी मानता है और इसी प्रकार नारकशरीर में रहनेवाले आत्मा को नारकीरूप मानता है परन्तु आत्मा तो अरूपी, ज्ञान-आनन्दस्वरूप है - ऐसा अज्ञानी नहीं जानता है। आत्मा तो देह से अत्यन्त भिन्न है। भिन्न-भिन्न शरीरों को धारण करने पर भी, आत्मा अपने चैतन्यस्वरूप से ही रहा है। चैतन्यस्वरूप से छूटकर जड़रूप कभी हुआ ही नहीं है।

आत्मा स्वयं तो ज्ञानस्वरूप ही है, वह कहीं मनुष्य आदि देहरूप नहीं हुआ है। मनुष्य-तिर्यच-देव-नारकी - ऐसे नाम तो इस शरीर के संयोग से हैं; कर्म की उपाधि से रहित आत्मा के स्वरूप को देखो तो वह ज्ञान-आनन्दस्वरूप ही है। मनुष्य इत्यादि शरीर या उसकी बोलने-चलने की क्रिया, वह कहीं आत्मा नहीं है; वह तो अचेतन जड़ की रचना है। देह से भिन्न, अनन्त चैतन्यशक्तिसम्पन्न अरूपी आत्मा है। वह आँख इत्यादि इन्द्रियों से नहीं दिखता है; वह तो अन्तर के अतीन्द्रिय स्वसंवेदन से ही ज्ञात होता है। ऐसे अपने आत्मा को अनादि काल से जीव ने जाना नहीं है और देह में ही अपनापन माना है; इसलिए वह चार गति में परिभ्रमण कर रहा है।

आत्मा क्या है? यह जाने बिना, धर्मी नाम धराकर भी देहादिक की



क्रिया को धर्म मानकर, मूढ़ जीव संसार में ही भटकता है। मैं तो अनन्त ज्ञान-आनन्दस्वरूप हूँ, देह से पार, इन्द्रियों से पार, राग से पार; ज्ञान से ही स्वसंवेद्य हूँ। अपने स्वसंवेदन के बिना दूसरे किसी उपाय से ज्ञात हो - ऐसा आत्मा नहीं है। स्वयं अपने से ही अनुभव में आवे - ऐसा आत्मा है। ऐसा आत्मा ही आदर करनेयोग्य है, उसे ही अपनाकर बहुमान करनेयोग्य है। देहादिक अपने से भिन्न है, उनरूप आत्मा नहीं है। अज्ञानी, जड़ शरीर को ही देखता है और उसे ही आत्मा मानता है परन्तु जड़ से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा तो नहीं जानता, इसलिए वह बहिरात्मा है।

श्रीगुरु, देहादिक से भिन्न चिदानन्दस्वरूप बतलाते हैं। उस स्वरूप को जो समझता है, उसे श्रीगुरु के प्रति बहुमान का यथार्थ भाव आता है कि अहो! चिदानन्दस्वरूप आत्मा, श्रीगुरु ने मुझे परम अनुग्रह करके बतलाया। अपना स्वसंवेदन हो, तब ज्ञानी गुरु की वास्तविक पहचान हो और उनके प्रति वास्तविक भक्ति आवे। अकेले शुभराग द्वारा ही चिदानन्दस्वरूप आत्मा नहीं पहचाना जाता है और अपने आत्मा को पहचाने बिना अन्य आत्मा की पहचान भी नहीं होती है।

सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा अपने आत्मा को देहादिक से भिन्न ऐसा जानता है कि मैं तो अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दशक्ति से भरपूर हूँ, मेरे ज्ञानानन्दस्वरूप में मैं अचल हूँ, मेरे ज्ञानानन्दस्वरूप से मैं कभी च्युत नहीं होता - ऐसे ज्ञानानन्दस्वरूप की जो सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान हुआ, उससे विचलित करने के लिये अब जगत् की कोई प्रतिकूलता समर्थ नहीं है। ज्ञानस्वरूप के आश्रय से जो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान हुए, वे अब आत्मा के आश्रय से ही अचल टिके रहते हैं; किसी संयोग के कारण श्रद्धा-ज्ञान चलायमान नहीं होते। ऐसे स्वसंवेदन से आत्मा के वास्तविक स्वरूप की पहचान करना, वह बहिरात्मपने से छूटने का और अन्तरात्मा-धर्मात्मा होने का उपाय है और तत्पश्चात् आत्मा के चैतन्यस्वभाव में ही लीन होकर स्वयं परमात्मा बन जाता है।

आत्मा चैतन्यस्वरूप है और यह देह तो जड़ है; आत्मा और शरीर



एक जगह में एक साथ रहे हुए होने पर भी, दोनों के अपने-अपने भाव अलग-अलग हैं, अर्थात् भाव से भिन्नता है। जैसे एक कसाई जैसा जीव और दूसरा सज्जन, ये दोनों एक घर में शामिल रहे होने पर भी, दोनों के भाव अलग ही हैं; उसी प्रकार इस लोक में जड़ शरीरादि और आत्मा, एक क्षेत्र में रहे होने पर भी, दोनों के भाव अत्यन्त भिन्न हैं। आत्मा अपने ज्ञान-आनन्द इत्यादि भाव में रहा है और कर्म-शरीरादि तो अपने अजीव-जड़भाव में रहे हैं; दोनों की एकता कभी हुई ही नहीं है - ऐसी अत्यन्त भिन्नता होने पर भी, मूढ़ आत्मा, जड़ से भिन्न अपने स्वरूप को नहीं जानता और देहादिक ही मैं हूँ - ऐसा मानकर मिथ्याभाव में प्रवर्तित होता है - वही संसार दुःख का कारण है।

शुद्धज्ञान और आनन्द के अतिरिक्त अन्य सब मेरे स्वरूप से बाह्य है। ऐसे अन्तरात्मा, अपने आत्मा को समस्त परभावों से भिन्न शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप अनुभव करता है। पर्याय में रागादि उपाधिभाव हैं, उन्हें जानता तो है परन्तु उन रागादिरूप अशुद्धस्वरूप ही आत्मा हो गया - ऐसा नहीं मानता है। राग से भी पार ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उसे अन्तर्दृष्टि से देखता है, वह अन्तरात्मा है।

अरे भाई! तेरे आत्मा का वास्तविकस्वरूप क्या है? - उसे एक बार जान तो सही! यह मनुष्यदेह तो श्मशान में जलकर भस्म होगी। शरीर तो जड़ परमाणु एकत्रित होकर बना है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा तो अनादि-अनन्त ज्ञान-आनन्दस्वरूप से अचल रहनेवाला है। पुण्य-पाप की क्षणिक वृत्तियाँ आयें और जायें, उतना आत्मा नहीं है। देह से पार, राग से पार, अन्तर में ज्ञानादि अनन्त गुणस्वरूप अपना आत्मा है। उसके साथ एकता करके, उसके आनन्द का जहाँ स्वसंवेदन किया, वहाँ बाह्य पदार्थ अंशमात्र अपने भासित नहीं होते और उनमें कहीं सुखबुद्धि नहीं रहती। चैतन्य का सुख, चैतन्य में ही है - उसका स्वाद जाना, वहाँ संयोग की भावना नहीं रहती है।

अज्ञानी को अन्तर के चैतन्य के आनन्द के स्वाद का पता नहीं है;



इसलिए बाह्य संयोग में सुख मानकर, वह संयोग की ही भावना भाता है और संयोग प्राप्त करके उनके भोग द्वारा सुख प्राप्त करना चाहता है, परन्तु जड़ संयोग में से अनन्त काल में भी सुख मिले, ऐसा नहीं है क्योंकि आत्मा का सुख बाहर में नहीं है। अज्ञानी जीव, बाह्य संयोग की ओर के राग, द्वेष, हर्ष, शोक का ही वेदन करता है परन्तु संयोग और राग से पार असंयोगी चैतन्यस्वभाव के अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन उसे नहीं है।

यहाँ पूज्यपादस्वामी, आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं कि हे जीव! तेरा आत्मा, मनुष्यादि शरीररूप नहीं है; अनन्त ज्ञान-आनन्द शक्तिस्वरूप तेरा आत्मा है, उसे अन्तर में स्वसंवेदन से तू जान।

यह आत्मा, देह से भिन्न ज्ञान-आनन्दस्वरूप है। कर्म, शरीर और विकार, इन तीनों की उपाधि से रहित अपना सहज ज्ञानानन्दस्वभाव है, उसे ज्ञानी स्वसंवेदन से जानता है। आत्मा की मुक्ति करना हो, उसे स्वसंवेदन से ऐसा आत्मा जानना योग्य है। ज्ञानी निरन्तर अपने आत्मा को ऐसा ही अनुभव करता है। अज्ञानी, आत्मा को रागवाला और देहवाला ही मानता है, वह संसार का कारण है।

धर्मी जानता है कि देव-मनुष्य इत्यादि मैं नहीं हूँ, उनमें रहनेवाला जो चैतन्यपना है, वही मैं हूँ। ज्ञानस्वरूप आत्मा तो मैं हूँ और शरीर, कर्म इत्यादि तो जड़स्वरूप है, वे मैं नहीं हूँ। राग भी उपाधिरूप भाव है, वह मेरे ज्ञान-दर्शनस्वरूप से भिन्न है - ऐसे भेदज्ञान के बिना धर्म नहीं होता है।

प्रश्न : यह शरीर इत्यादि सब दिखता है न ?

उत्तर : शरीर दिखता है परन्तु वह जड़ है - ऐसा दिखता है। आत्मा कहीं जड़ नहीं है। शरीर को जाननेवाला, शरीर से भिन्न है; वह जाननेवाला स्वयं ज्ञानस्वरूप आत्मा है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को जो जानता है, उसे बाह्य विषयों में गृह्यता नहीं होती है। पुण्य के ठाठ हों, उनमें सुखबुद्धि नहीं होती है और प्रतिकूलता हो, उसे दुःख का कारण नहीं मानता है। मैं तो संयोग से पृथक् ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ - ऐसा धर्मी जानता है। अल्प हर्ष-शोक हों परन्तु किसी संयोग को अपना मानकर वे हर्ष-शोक नहीं होते। अज्ञानी,



चैतन्यस्वरूप को चूककर इस जड़-शरीर को ही अपना मानता है। यह शरीर तो जड़-कलेवर-मुर्दा है। अज्ञानी इस मुर्दे को ही अपना स्वरूप मानकर अनादि काल से मुर्दे को साथ लेकर घुमता है परन्तु 'यह शरीर तो जड़ मुर्दा है और मैं चिदानन्दस्वरूप जीवता जीव हूँ' - ऐसा भान करके जड़-मुर्दे की मूर्च्छा का परित्याग नहीं करता। उसे शरीर प्रिय लगता है परन्तु चैतन्य भगवान प्रिय नहीं लगता। ज्ञानी को तो एक अपना चैतन्य भगवान ही प्रिय है, इसके अतिरिक्त समस्त बाह्य पदार्थों को अपने से भिन्न जानता है, उसमें कहीं मूर्च्छित नहीं होता है।

देखो! यह रामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं, चरमशरीरी (अर्थात्) उसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं; उन्हें अन्तर में भान है कि इन लक्ष्मण इत्यादि से मेरा आत्मा भिन्न है, परन्तु अभी राग है इसलिए लक्ष्मण के मृतक शरीर को छह महीने तक साथ में लेकर घूमते हैं। उनके दो पुत्र (लव और कुश) आकर पिताजी को चरणवन्दन कर दीक्षा लेने चले जाते हैं परन्तु राम तो लक्ष्मण की प्रीति के कारण कुछ बोलते नहीं हैं। लक्ष्मण के मुर्दे को खिलाने-पिलाने-नहलाने की चेष्टा करते हैं। वहाँ बाह्य दृष्टिवालों को तो ऐसी ही शंका होती है कि क्या यह ज्ञानी! परन्तु उन्हें ज्ञानी की दृष्टि का पता नहीं है। कंधे पर लक्ष्मण का मृतक शरीर पड़ा है, तब भी दृष्टि चिदानन्दस्वरूप पर ही पड़ी है। हम तो चिदानन्दस्वरूप आत्मा हैं, यह शरीर भी हम नहीं तो फिर दूसरे की क्या बात!! और यह राग भी हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। हम तो अनन्त ज्ञान-आनन्द की शक्तिस्वरूप ही हैं, ऐसा अन्तरभान ज्ञानी को निरन्तर वर्तता है।

देखो! रावण जब सीता को उठा ले गया, तब सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी, वृक्ष को और पर्वत को पूछते हैं कि अरे वृक्ष! तूने कहीं मेरी सीता को देखा? अरे! सीता धर्मात्मा! पतिव्रता! उसका क्या हुआ होगा! अरे पर्वत! तूने कहीं मेरी जानकी को देखा? इस प्रकार पहाड़ को पूछते हैं परन्तु पर्वत कुछ बोलेगा? तथापि इस प्रसंग में भी अन्तर में देह से पार और शोक से पार चिदानन्दस्वरूप का भान उन्हें वर्तता है।

क्रमशः

[आत्मभावना (गुजराती) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन]



एक शिक्षाप्रद कथा

मङ्गलायतन संस्कार वाटिका

भगवान नेमिनाथ के पितामह अंधकवृष्टि का भूतकाल

पापी से परमात्मा

इस जम्बूद्वीप की अयोध्यानगरी में अनन्तवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगरी के कुबेर के समान धनी सुरेन्द्रदत्त नाम का सेठ रहता था। वह सेठ प्रतिदिन दस दीनार से; अष्टमी को सोलह दीनार से; अमावस्या को चालीस दीनार से, चतुर्दशी को अस्सी दीनार से अरहन्त भगवान की पूजा करता था और उपवास करता था। इन सब कारणों से सेठ ने 'धर्मशील' नाम का पद प्राप्त किया था।

एक दिन सेठ ने जलमार्ग से परदेश जाकर धन कमाने की इच्छा व्यक्त की। उसने बारह वर्ष में वापस आने का विचार किया था; इस कारण बारह वर्ष तक भगवान की पूजा करने के लिए जितना धन चाहिए था, उतना धन अपने मित्र रुद्रदत्त ब्राह्मण को सौंपकर कहा कि हे मित्र! इस धन से तू जिनपूजादि कार्य करते रहना, कारण कि तू मेरे समान है।

सेठ के परदेश जाने के पश्चात् रुद्रदत्त ब्राह्मण ने थोड़े ही दिनों में समस्त ही धन परस्त्री तथा जुआ आदि व्यसनों में खर्च कर दिया। उसके बाद वह चोरी आदि कार्य करने लगा। एक रात श्येनक नाम के कोतवाल ने उसे चोरी करते देखकर कहा कि तू ब्राह्मण है; अतः मैं तुझे मारता नहीं हूँ, परन्तु तू यह नगर छोड़कर चला जा। यदि फिर किसी समय तुझे ऐसा काम करते देख लिया तो मैं तुझे यमराज के पास भेज दूँगा-मार दूँगा - ऐसा कहकर कोतवाल उस ब्राह्मण पर क्रोधित हुआ। रुद्रदत्त भी वहाँ से निकलकर उल्काभिमुख पर रहनेवाले भीलों के स्वामी पापी कालक से जा मिला।



एक बार रुद्रदत्त अयोध्यानगरी में गायों के समूह का अपहरण करने आया। वहाँ श्येनक कोतवाल द्वारा मारे जाने से वह देवद्रव्य का भोग तथा चोरी आदि के महापाप के कारण से अधोगति में (सातवें नरक) पहुँच



गया। वहाँ से निकलकर मगरमच्छ हुआ, फिर नरक गया; पुनः सिंह होकर नरक गया, नरक से निकलकर दृष्टिविष नाम का सर्प हुआ, फिर नरक गया और वापिस सर्प बना, फिर नरक गया और वहाँ से आकर भील बना। इस प्रकार सभी नरकों में जाकर बहुत दुःख और कष्टों में से बाहर निकलकर त्रस-स्थावर योनियों में बहुत काल तक परिभ्रमण करता रहा।

अन्त में इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में जब राजा धनंजय राज्य करता था, तब गौतम गोत्री कपिष्ठल नाम के ब्राह्मण के अनुन्धर नाम की अन्ध स्त्री से वह रुद्रदत्त का जीव अत्यन्त गरीब परिवार में गौतम नाम का पुत्र हुआ। पुत्र उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण परिवार का नाश हो गया। उसे खाने के लिए अन्न नहीं मिलता था, उसका पेट सूख गया था और हड्डियाँ दिखने लगी थी। नसें दिखने से उसका शरीर बहुत भयानक लगता था। उसके बालों में लीखें पड़ी थी। जहाँ भी वह सोता, वहाँ के मनुष्य उसे मारते थे। अपनी शरीर की स्थिति के लिए, कभी भी अलग न हो - ऐसे मित्र समान भिक्षापात्र वह सदा अपने हाथ में रखता था। इच्छित रस पाने को वह हमेशा “दो, दो” ऐसे शब्दों द्वारा मात्र भीख माँगने से ही सन्तोष प्राप्त करने का लालची था, परन्तु इतना अभागा था कि भिक्षा द्वारा उसका पेट नहीं भरता था। जिस प्रकार त्योहार के दिनों में कौआ खाना ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भटकता रहता है; उसी प्रकार वह भी भिक्षा प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटकता रहता था। वह मुनियों की तरह सर्दी-गर्मी और हवा के झपट्टे बारम्बार सहन करता था। वह हमेशा गन्दा रहता था। मात्र रसनेन्द्रिय के विषय की इच्छा रखता था, अन्य सभी इन्द्रियों का रस छूट गया था।

जिस प्रकार राजा हमेशा दण्डधारी होता है; वैसे ही यह भी हमेशा दण्डधारी ही रहता था - हाथ में लकड़ी रखता था। ‘सातवें नरक में उत्पन्न होनेवाली नारकी का रूप ऐसा होता है’ - मानों यह बताने के लिए ही विधाता ने इसकी रचना की हो। वह आद अथवा स्याही का रूप धारण करता था अथवा मानो सूर्य के भय से अन्धकार का समूह मनुष्य का रूप



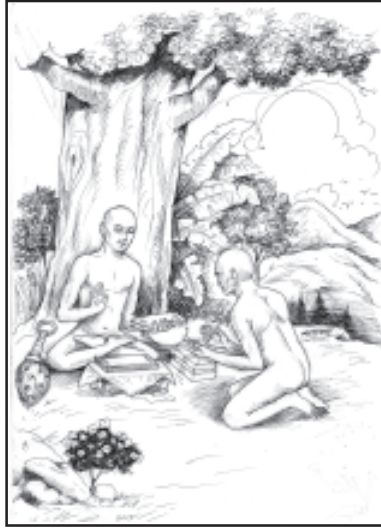
धारण करके चल रहा हो - ऐसा लगता था। तात्पर्य यह है कि वह अत्यन्त घृणास्पद था, पापी था। यदि उसे किसी दिन कष्टपूर्वक पूर्ण आहार मिल जाता तो भी आँखों से अतृप्त जैसा लगता था। वह जीर्ण-शीर्ण और फटे हुए कपड़े अपनी कमर में बाँधे रखता था। उसका शरीर बहुभाग चोटों से युक्त था, उसमें से दुर्गन्ध आती थी। उसे भिनभिनाती मक्खियाँ हमेशा घेरे रहती थी, कभी हटती नहीं थी। मक्खियों के चिपकने से उसे बहुत गुस्सा आता था। नगर के बालकों का झुण्ड हमेशा उसके पीछे-पीछे रहता था और पत्थर आदि प्रहारों से उसे पीड़ा पहुँचाता था। वह क्रोधित होकर उन बालकों के पीछे दौड़ता भी था, परन्तु बीच में ही गिर जाता था। इस प्रकार वह अनेक कष्टपूर्वक अपने दिन बिता रहा था।

अहा! देखो तो सही! जीव के पापपरिणामों का दुःखप्रदायक फल!! थोड़े से इन्द्रियजन्य सुख के लिए हँस-हँसकर पाप बाँधनेवाला अज्ञानी प्राणी भूल जाता है कि इस पापोदय का फल उसे रो-रोकर भी भोगना पड़ेगा।



किसी एक समय कालादिलब्धियों की अनुकूल प्राप्ति से वह आहार के लिए नगर में भ्रमण करनेवाले समुद्रसेन नाम के मुनिराज के पीछे जाने लगा। मुनिराज का आहारदान श्रवण सेठ के यहाँ हुआ। सेठ ने उस गौतम ब्राह्मण को भी भरपेट भोजन करा दिया। भोजन करने के बाद वह मुनिराज के आश्रम में जाकर कहने लगा - हे प्रभो! आप मुझे अपने जैसा बना दो।

मुनिराज ने उसके वचन सुनकर पहले तो यह निर्णय किया कि यह वास्तव में भव्य है। फिर उसे कुछ दिनों तक अपने पास रखकर उसके हृदय की परख की, तत्पश्चात् मुनिराज ने





उसे शान्ति का साधनभूत संयम ग्रहण करा दिया। उसको एक वर्ष पश्चात् बुद्धि आदि ऋद्धियाँ भी प्राप्त हो गई।

अब वह गौतम ब्राह्मण, गुरु के स्थान तक पहुँच गया, उनके समान बन गया। आयु के अन्त में उसके गुरु मध्यम ग्रैवेयक के सुविशाल नाम के उपरितन विमान में अहमिन्द्र हुए और श्री गौतम मुनिराज भी अन्त में भले प्रकार से विधिपूर्वक आराधनाओं की आराधना करके समाधिमरण करके उसी मध्यम ग्रैवेयक के सुविशाल विमान में अहमिन्द्र पद को प्राप्त हुए। वहाँ के दिव्यसुख का उपभोग प्राप्त करके वह ब्राह्मण मुनि का जीव अट्ठाईस सागर की आयु पूर्ण होने पर वहाँ से चयकर अन्धकवृष्टि (श्री नेमिनाथ भगवान के दादाजी) नाम का राज हुआ।

एक बार उसने सुप्रतिष्ठित जिनेन्द्र के समीप जाकर अपने पूर्व भव के सम्बन्ध में पूछा। भगवान के श्रीमुख से अपने पूर्व भवों का वृत्तान्त सुनकर वह संसार से भयभीत हो गया, अतः परमपद-मोक्षपद प्राप्त करने की इच्छा से अपने पुत्र समुद्रविजय को अभिषेकपूर्वक राज्य सौंप दिया और स्वयं समस्त ही परिग्रह छोड़कर, शान्तचित्त होकर उन्हीं सुप्रतिष्ठित जिनेन्द्र के समीप बहुत राजाओं के साथ तप धारण कर लिया। इस प्रकार संयम धारण करके अन्त में समाधिमरण किया और कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

देखो! चैतन्यस्वभाव की अद्भुतता!! कहाँ तो रुद्रदत्त के भव में अनेक प्रकार के पापपरिणामों से लिप्त एवं उसके फल में नरकादि गतियों का परिभ्रमण!! और कहाँ जैनेश्वरी दीक्षा और देव का भव! स्वरूप की अनवरत आराधना से मुक्ति का लाभ!! अहा! एक समय का पापपरिणाम अथवा पुण्यपरिणाम, चैतन्य के शुद्धस्वरूप का स्पर्श भी नहीं करता!! अहो! पुण्य-पाप की विकारी वृत्तियों के समय भी उनसे अलिप्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव ही एकमात्र आराध्य एवं उपास्य है। उसी की उपासना मुक्ति प्रदायिनी है।

(- हरिवंशपुराण में से)



समाचार-सार

मङ्गलायतन में दशलक्षण महापर्व

तीर्थधाम मङ्गलायतन : दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रतिदिन सर्व प्रथम श्री बाहुबली जिनमन्दिर में जिनेन्द्र अभिषेक पूजन-विधान का विशेष आयोजन एवं तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का माङ्गलिक सी.डी. प्रवचन का लाभ सभी को प्राप्त हुआ। इस पावन प्रसंग पर जयपुर से पधारे डॉ. दीपक जैन शास्त्री, जैनदर्शनाचार्य, आयुर्वेदाचार्य द्वारा समयसार परमागम; जैनदर्शन में कर्म सिद्धान्त; और दश धर्मों पर विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

प्रतिदिन जिनमन्दिर में जिनेन्द्र भक्ति, मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा शास्त्र स्वाध्याय के साथ-साथ ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये। पर्वराज के पावन प्रसंग पर देश के अनेक स्थानों से साधर्मिजनों ने पधारकर यहाँ संचालित सभी कार्यक्रमों का भरपूर लाभ लिया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन के निदेशक पण्डित अशोककुमार लुहाड़िया ने दशलक्षण पर्व में मङ्गलायतन एवं मङ्गलायतन विश्वविद्यालय में स्वाध्याय का लाभ दिया तथा भीलवाड़ा में होनेवाले पञ्च कल्याणक के हेतु कोटा, भीलवाड़ा, नीमच, चित्तौड़गढ़ भी गये वहाँ उनके स्वाध्याय आदि का लाभ मिला।

भीलवाड़ा (राज.) : दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर अध्यात्मरसिक पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन आगरा द्वारा विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। आपने दशलक्षण धर्म के पृथक्-पृथक् स्वरूप का विवेचन करने के साथ ही अरहन्त का पूज्यपना, समयसार का अर्थ, भेदज्ञान का साधन, पुरुषार्थ से मोक्ष इत्यादि आत्महितकारी विषयों पर विशेष व्याख्यान प्रदान किये। विदित हो कि यहाँ नवनिर्मित श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिन मन्दिर का भव्य पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव 24 से 30 दिसम्बर 2012 तक आयोजित है। इस सन्दर्भ में पण्डितजी द्वारा विशेष दिशा-निर्देश प्राप्त हुए। भीलवाड़ा का कार्यक्रम पूर्ण करके 29 सितम्बर से 04 अक्टूबर तक श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर बिजौलियां में पंच दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें भी पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन, पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन द्वारा विशेष स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ। यहाँ पधारने से पूर्व पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, **उदयपुर मुमुक्षु मण्डल** में दशलक्षण पर्व के लिये गये। वहाँ प्रातः काल समयसार कर्ताकर्म अधिकार पर स्वाध्याय एवं रात्रि में मोक्षमार्गप्रकाशक के तीसरे अधिकार के आधार पर विशेष चर्चा की।

कारंजा (महा.) : दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर पण्डित ब्रह्मचारी



कैलाशचन्द जैन 'अचल' ने प्रातः समयसार निर्जरा अधिकार एवं सायंकाल दशलक्षण पूजन के आधार पर आध्यात्मिक स्वाध्याय कराया तथा गुरुकुल के बच्चों की प्रतिदिन मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर कक्षा ली।

अलीगंज (एटा) : मङ्गलार्थी अभिषेक जैन सिहोर, अलीगंज पधारे। उन्होंने वहाँ प्रातः पूजन तथा दोपहर में छहढाला, रात्रि में निश्चय व्यवहार, निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय पर स्वाध्याय कराया। मङ्गलार्थी अभिषेक जैन द्वारा छहढाला की कक्षा ली, जिसमें बच्चों-युवा वर्ग ने विशेष लाभ लिया।

सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र) : यहाँ शान्तिनाथ जिनालय में तीर्थधाम मङ्गलायतन से पण्डित अभिषेक शास्त्री, पालड़ी, अहमदाबाद में दशलक्षण महापर्व में स्वाध्याय हेतु गये। वहाँ प्रातः संगीतमय पूजन, स्वाध्याय, बहिनश्री के वचनामृत पर तथा दोपहर में समयसार कर्ताकर्म अधिकार एवं शाम को निश्चय-व्यवहार पर स्वाध्याय कराया। मङ्गलार्थी अभिषेक द्वारा युवावर्ग बहुत प्रभावित रहा तथा सुरेन्द्रनगर से जोरावरनगर, लीमड़ी, बड़वान के मुमुक्षु भाईयों ने स्वाध्याय का लाभ लिया।

अहमदाबाद : 19 से 28 सितम्बर दशलक्षण पर्व के अवसर पर वस्त्रापुर मुमुक्षु मण्डल में अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई। इस अवसर पर पण्डित संजय शास्त्री तीर्थधाम मङ्गलायतन के माध्यम से प्रातः दशलक्षण पूजन विधान, समयसार पर स्वाध्याय एवं रात्रि में भक्ति, विभिन्न विषयों पर स्वाध्याय एवं तात्विक सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न कराये गये। पर्व के इस मंगल अवसर पर मुमुक्षु मण्डल वस्त्रापुर में नवयुवक एवं युवतियों का धर्म श्रवण हेतु मेला लगा रहा। अन्त में मण्डल द्वारा शास्त्रीजी को पुनः पुनः आने का आमन्त्रण दिया गया।

पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का भव्य निमन्त्रण

सोनगढ़ : 30 सितम्बर को श्री परमागम मन्दिर सोनगढ़ में श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का भव्य निमन्त्रण दिया गया। जिसमें श्री बसन्तभाई दोशी ने विशिष्ट परिचय देकर सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज को सम्मोदशिखर पहुँचाने का आह्वान किया। इस अवसर पर पण्डित अभयकुमार शास्त्री, पण्डित संजय शास्त्री, श्री अजित जैन, बड़ौदा आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

सौधर्म इन्द्र का सम्मान एवं पत्रिका विमोचन

बड़ौदा : सम्मोदशिखर की पवित्र धरा पर होनेवाले श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सौधर्म इन्द्र श्री अजित जैन अनीता जैन बड़ौदा का भव्य स्वागत एवं पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की भव्य पत्रिका का विमोचन समारोह 15-16 सितम्बर को सौराष्ट्र भवन बड़ौदा में सम्पन्न



हुआ। इस अवसर पर श्री सम्मोदशिखर रथ का भव्य स्वागत सम्पूर्ण बड़ौदा जैनसमाज ने किया।

15 सितम्बर को प्रातः श्रीजी के आगमपूर्वक श्री सम्मोदशिखर विधान सम्पन्न हुआ, दोपहरकाल में प्रवचन, गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन एवं रात्रि में प्रवचन एवं भक्ति संध्या का भव्य कार्यक्रम हुआ। 16 सितम्बर को रथ का भव्य स्वागत पूर्वक, पत्रिका विमोचन एवं माता-पिता तथा सौधर्म इन्द्र का गरिमापूर्ण सम्मान हुआ। इस भव्य कार्यक्रम में विद्वानों के रूप में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्द सिवनी, ब्रह्मचारी जतीशभाई, ब्रह्मचारी धन्यकुमार बेलोकर, ब्रह्मचारी बसन्तभाई दोशी, ब्रह्मचारी हेमचन्दजी हेम, पण्डित अभयकुमारजी, पण्डित शैलेशजी, पण्डित रजनीभाई, पण्डित राजकुमारजी, पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित ऋषभ शास्त्री, पण्डित मुकेश तन्मय, पण्डित संदीप शास्त्री, पण्डित सचिन शास्त्री आदि और भी अनेक विद्वान उपस्थित थे।

श्रेष्ठीगणों में श्री माणिकचन्द रसिकलाल धारीवाल, श्री ज्ञानचन्द जैन कनाड़ा, श्री विजय लुहाड़िया आदि एवं श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के सभी पदाधिकारी उपस्थित थे। यह समस्त कार्यक्रम श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के तत्वावधान में एवं श्री महीपालजी ज्ञायक के संयोजकत्व में सम्पन्न हुआ। संचालन पण्डित श्री संजय शास्त्री तीर्थधाम मङ्गलायतन ने किया।

वैराग्य समाचार

नीमच : श्री हीरालालजी शाह नीमच का शान्त परिणामों सहित देहपरिवर्तन हुआ। आप धार्मिक, सरल स्वभावी थे। आप तीर्थधाम मङ्गलायतन के निदेशक पण्डित अशोककुमार लुहाड़िया के बड़े जीजाश्री थे।

कोलारस : श्री रतनचन्द चौधरी कोलारस का जागृतिपूर्वक अत्यन्त शान्त परिणामों से देहपरिवर्तन हुआ। आप धार्मिक एवं स्वाध्यायी थे। आप श्री चिन्तामणि चौधरी कोलारस के भाई थे।

कानपुर : श्री जिनेन्द्रकिशोर जैन कानपुर का अत्यन्त शान्त परिणामों से देहपरिवर्तन हुआ। आप धार्मिक एवं सौम्य सरल स्वभावी थे।

देहरादून : श्री सुभाषचन्द्र जैन, देहरादून का अत्यन्त शान्त परिणामों से देहपरिवर्तन हुआ। आप श्रीमती कविता जैन देहरादून के पति थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार इष्टवियोग की इस विषम परिस्थिति में आपके परिजनों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा के अभ्युदय की मंगल कामना करता है।